॥ श्रीः ॥

कादम्बरी-शुकनासोपदेशः

'उत्तमा' 'मालती' संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेतः

एवं समतिक्रामत्सु केषुचित् दिवसेषु राजा चन्द्रापीडस्य [1]यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षुः प्रतीहारानुपकरणसम्भारसंग्रहार्थमादिदेश [2]।

अन्वयः—एवम् समतिक्रामत्सु केषुचित् दिवसेषु चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षुः राजा, उपकरणसंभारसंग्रहार्थम् प्रतीहारान् आदिदेश।

शब्दार्थः—एवम् = इस प्रकार। समतिक्रामत्सु केषुचित् दिवसेषु = कुछ दिन बीतने पर। चन्द्रापीडस्य = 'चन्द्रापीड' का ('चन्द्रापीड' नाम के अपने पुत्र का)। यौवराज्याभिषेकं = युवराज-कर्म के लिए अभिषेक को। चिकीर्षुः राजा = करने की इच्छावाला महाराज (चन्द्रापीड का पिता तारापीड)।

---

१. भारतीय राज्यपरम्परा के अनुसार राजा अपने ज्येष्ठ पुत्र को युवराज पद पर प्रतिष्ठित करता था। यह कार्य राजा अपनी वृद्धावस्था में करता था। इसका रहस्य यह था कि राजा अपने सामने ही अपने पुत्र को राज्यभार देकर उसे शासन में प्रवीण बनाता था और स्वयं एक प्रकार से राज्यभार से मुक्त होकर विश्राम लेता था। इस प्रक्रिया से वृद्ध राजा की मृत्यु के बाद युवक राजा को शासन-सूत्र सँभालने में कठिनाइयों का अनुभव नहीं होता था। इस अवसर पर युवराज को मन्त्रोच्चारण के साथ तीर्थों के पवित्र जल से एक विशेष प्रकार का स्नान कराया जाता था। इसी उत्सव-विशेष को 'यौवराज्याभिषेक' या 'युवराज का राजतिलक' कहा जाता था।

२. युवराज के राजतिलक के अवसर पर तीर्थों का पवित्र जल, हवन-सामग्री, समिधा, घृत, राजकीय वस्त्र, छत्र, चँवर, राज्यसिंहासन प्रभृति वस्तुओं को उपयोग में लाया जाता था।

उपकरणसंभारसंग्रहार्थम्=सामग्री-समूह के संचय के लिए। प्रतीहारान्=द्वारपालों को। आदिदेश=आदेश दिया।

समासः—युवा चासौ राजा इति युवराजः, तस्य कर्म यौवराज्यम्, तदर्थम् अभिषेकः, तम् यौवराज्याभिषेकम्। उपकरणानाम् संभारः, तस्य संग्रहः, तस्मै अर्थम् इति उपकरणसंभारसंग्रहार्थम्।

सरलार्थः—राजा तारापीडः चन्द्रापीडसंज्ञकस्य आत्मजस्य यौवराज्याभिषेकार्थम् सामग्रीसमुदायानाम् संघटनाय सेवकान् आज्ञापयामास।

अनुवादः—इस तरह कुछ दिन बीतने के बाद चन्द्रापीड को युवराज-पद के लिए अभिषेक करने की इच्छावाले महाराज तारापीड ने अभिषेक की सभी सामग्री जुटाने के लिए द्वारपालों को आदेश दिया।

समुपस्थितयौवराज्याभिषेकञ्च तं कदाचिद्दर्शनार्थमागतमारूढविनयमपि विनीततरमिच्छन् कर्तुम् शुकनासः सविस्तरमुवाच।

अन्वयः—समुपस्थितयौवराज्याभिषेकम् च कदाचित् दर्शनार्थम् आगतम् आरूढविनयम् अपि तम् विनीततरम् कर्तुम् इच्छन् शुकनासः सविस्तरम् उवाच।

शब्दार्थः—समुपस्थितयौवराज्याभिषेकम् = शीघ्र ही युवराज कर्म के लिए अभिषिक्त होनेवाले को। च = और। कदाचित् = एक बार। दर्शनार्थम् = दर्शन के लिए। आगतम् = आये हुए को। आरूढविनयम् अपि = प्रस्फुटित विनयवाले को भी। तम् = उसको (चन्द्रापीड को)। विनीततरम् कर्तम् इच्छन् शुकनासः = और अधिक विनीत बनाने के लिए इच्छा करते हुए शुकनास ने। सविस्तरम् = विस्तारपूर्वक। उवाच = कहा।

समासः—सम्यक् उपस्थितः यौवराज्याभिषेकः यस्य, तम् समुपस्थितयौवराज्याभिषेकम्।

सरलार्थः—एकदा दर्शनार्थम् समुपस्थितम्, यौवराज्यार्थम् सद्यः संभावितामिषेकम्, विनीतमपि चन्द्रापीडम् विनीततरम् चिकीर्षन् शुकनासः विस्तरेण वक्तुमुपचक्रमे।

अनुवादः—एकबार दर्शन के लिए आये हुए, निकट भविष्य में यौवराज्य के लिए अभिषिक्त होनेवाले, पहले ही से विनीत चन्द्रापीड को और अधिक विनीत बनाने की इच्छावाले प्रधानमन्त्री शुकनास ने विस्तारपूर्वक कहा :—

तात[1] ! चन्द्रापीड ! विदितवेदितव्यस्य अधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति । केवलञ्च निसर्गत एव अभानुभेद्यमरत्नालोकच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम् ।

अन्वयः—तात ! चन्द्रापीड ! विदितवेदितव्यस्य अधीतसर्वशास्त्रस्य ते अल्पम् अपि उपदेष्टव्यम् न अस्ति । केवलम् च निसर्गतः एव अतिगहनम् यौवनप्रभवम् तमः अभानुभेद्यम् अरत्नालोकच्छेद्यम् अप्रदीपप्रभापनेयम् (भवति)।

शब्दार्थः—तात चन्द्रापीड ! =वत्स चन्द्रापीड ! विदितवेदितव्यस्य अधीतसर्वशास्त्रस्य ते = ज्ञातव्य विषयों को अधिगत कर चुकनेवाले, सभी शास्त्रों को पढ़ चुकनेवाले तुमको । अल्पम् अपि = थोड़ा भी । उपदेष्टव्यम् = उपदेश देने योग्य विषय । न अस्ति =(अवशिष्ट) नहीं (रह गया) है । केवलम् = सिर्फ । निसर्गतः एव = स्वभाव से ही । अतिगहनम् यौवनप्रभवम् तमः = युवावस्था से उत्पन्न अत्यन्त सघन अन्धकार । अभानुभेद्यम् = सूर्य से भी भेदन नहीं किया जा सकने वाला । अरत्नालोकच्छेद्यम्=मणियों की चमक से भी नहीं मिटने वाला । अप्रदीपप्रभापनेयम् =दीप-शिखा से भी दूर नहीं होने वाला । (भवति = होता है ।)

समासः—विदितम् वेदितव्यम् येन स विदितवेदितव्यः, तस्य विदितवेदितव्यस्य । भानुना भेद्यम् इति भानुभेद्यम्, न भानुभेद्यम् इति अभानुभेद्यम् । यौवनम् प्रभवः (= उत्पत्तिस्थानं) यस्य तत् यौवनप्रभवम् ।

सरलार्थः—वत्स ! सर्वज्ञस्य ते किमपि वक्तव्यम् नास्ति । किन्तु प्रकृत्यैव

अलङ्कारः—यहाँपर 'विदित' से 'अस्ति' पर्यन्त में चन्द्रापीड के दो विशेषणों का अर्थ उपदेश के अभाव में कारण है। अतः यहाँ पर पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलङ्कार है। 'केवलम्' से 'यौवनप्रभवम्' तक अतिशयोक्ति, समुच्चय और पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग के परस्पर एक-दूसरे के अंग होने से यहाँ 'संकर' अलंकार है।

१. 'तात' शब्द का प्रयोग पिता के अतिरिक्त पूज्यजन, पुत्र और पुत्रसदृश लोगों के प्रति भी होता है:—

'तातशब्दं प्रयुञ्जन्ति पूज्ये पितरि चात्मजे' (नारद वचन)

गहनतमः यौवनजन्यान्धकारः सहस्ररश्मेः रश्मिभिः, मणीनाम् तेजोभिः, दीपान
प्रकाशेनापि च दूरीकर्तुमशक्य एव ।

अनुवादः—वत्स चन्द्रापीड ! ज्ञातव्य विषयों के ज्ञाता, सभी शास्त्रों
निष्णात तुमको कुछ भी कहना शेष नहीं है। फिर भी बात यह है कि युवावस्
का घनीभूत अन्धकार सहस्ररश्मि के आलोक, मणियों की कान्ति और दीप
के प्रकाश-पुञ्ज से भी दूर नहीं किया जा सकता है ।

अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः । कष्टमनञ्जनवर्तिसाध्यम्
परम् ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम्[२] । अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रः दर्पदाह

१. अनेक प्रकार के नेत्ररोगों में 'तिमिररोग' को बहुत हानिकारक बताय
गया है। किन्तु वह भी 'चन्द्रोदयावर्ति' के सेवन से ठीक हो जाता है। वैद्यक मे
बताया गया है कि:—

शंखनाभि, बहेड़े के बीज की गिरी, हरड़ का बकला, शुद्ध मैनसिल, पिप्पली
काली मिर्च, तथा वच समभाग लेकर खरल में डाल बकरी का दूध दे-देकर
घोटे। जब अत्यन्त श्लक्ष्ण होकर 'वर्ति' बनाने योग्य हो जाय, तब जौ जितनी
बड़ी बत्तियाँ बनाकर छाया मे सुखाकर रख ले। इस 'वर्ति' में से मसू
जितना लेकर स्वच्छ पत्थर पर जल से घिसकर 'अंजन' करे तो तिमि
मांसवृद्धि, काँच, पटल, अर्बुद, रतौंधी तथा एक वर्ष तक का पुराना पुष्प ना
हो जाता है। यह 'चन्द्रोदयावर्ति' है।

यह तीक्ष्णाञ्जन होने से रात को लगायी जाती है, रात को प्रयुक्त होने
कारण तथा तिमिर आदि दूर करने से ही इसका नाम 'चन्द्रोदयावर्ति' पड़ा है:—

शंखनाभिर्बिभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला ।
पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम् ॥
छागक्षीरेण संपिष्य वर्तिं कृत्वा यवोन्मिताम् ।
हरेणुमात्रां संघृष्य जलैः कुर्यादथाञ्जनम् ॥
तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम् ।
रात्र्यान्ध्यं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चन्द्रोदया जयेत् ॥

शार्ङ्गधरसंहिता उत्तर खण्ड, अध्याय १३, श्लोक ७५, ७६, ७७

२. वैद्यक शास्त्रों में नेत्ररोगों के अनेक भेद हैं, जिनमें से 'तिमिर रोग'—लिंग
नाश, अभिष्यन्दादि नामों से पुकारा जाता है। इसमें त्रिदोष तो कारण हैं ही
साथ ही मोतियाबिंद के दोष नेत्र के चतुर्थ पटल में जब आ जाते हैं, तब तिमि

'ज्वरोष्मा ।

अन्वयः—लक्ष्मीमदः अपरिणामोपशमः (अतएव) दारुणः । ऐश्वर्य-तिमिरान्धत्वम् अनञ्जनवर्तिसाध्यम् (अतएव इदम्) अपरम् कष्टम् । दर्पदाह-ज्वरोष्मा अशिशिरोपचारहार्यः (अतएव) अतितीव्रः ।

शब्दार्थः—लक्ष्मीमदः = धन का उन्माद । अपरिणामोपशमः = वृद्धावस्था में भी शान्त नहीं होने वाला है । (इसीलिए वह) दारुणः=भीषण (होता है) ।

रोग होता है (तिमिराख्यः स वै दोषः चतुर्थं पटलं गतः)। वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, संसर्गज, रक्तज तथा सन्निपातज नाम से 'तिमिर' के छः भेद होते हैं :—

'तिमिराणि षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा । संसर्गेण च रक्तेन षष्ठं स्यात्सन्निपाततः ॥'

शार्ङ्गधरसंहिता, अध्या० ७, श्लोक १६७ ।

यह बहुत भयंकर नेत्ररोग है । आँखों के आगे अँधेरा छाया रहता है । यह दर्शन-शक्ति-संहारक बताया गया है, किन्तु यह भी चिकित्सा से साध्य है :—

मूलं दृष्टिविनाशस्य तिमिरं समुदाहृतम् ।
ऋषिभिस्त्वरितं तस्मात् तस्य कुर्याच्चिकित्सितम् ॥

१. यदि प्रकुपित वायु और कफ त्वचा में स्थिर रहते हैं तो ज्वर के आदि में ठंढ लगती है और उनका वेग शान्त होने पर अन्त में पित्त के कारण दाह का अनुभव होता है। अत्यन्त दाह के कारण ही इसे 'दाहज्वर' कहा गया है। यह संसर्गज (अर्थात् सन्निपातज) होता है । दाहज्वर रोगी को अत्यधिक कष्ट देनेवाला एवं कृच्छ्रसाध्य होता है :—

'त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरे ।
तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च ॥
करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च ।'

माधवनिदान, ज्वरनिदान, श्लोक ४१, ४६ ।

इस पित्त-प्रधान दाहज्वर का स्वरूप निम्नलिखित समझना चाहिए:—तेज बुखार, बेचैनी, अनिद्रा, वमन, गला-ओंठ-मुख-नाक आदि में जलन, अटपट बकना, बेहोशी, प्यास, मल-मूत्र का पीला हो जाना आदि:—

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्रालुत्वं तथा वमिः ।
कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥
प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्छा दाहो मदस्तृषा ।
पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च ॥

माधवनिदान,—ज्वरनिदान